Shodhaamrit, Vol.-2; Issue-1 (Jan.-June) 2025 : Page No.-188-197

शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-1 (Jan.-June) 2025
Page No- 128-135

©2025 Shodhaamrit (Online & Print)
www.shodhaamrit.gyanvividha.com

Dr. Sumit kumar
sr. Assistant professor,
Department of philosophy, S.M. College, Bhagalpur, TMBU.

Corresponding Author :
Dr. Sumit kumar
sr. Assistant professor,
Department of philosophy, S.M. College, Bhagalpur, TMBU.

उपनिषदों में चेतना की अवधारणा और आधुनिक मनोविज्ञान

सारांश : इस शोध-पत्र का लक्ष्य उपनिषदों में प्रतिपादित **चेतना (चित्/प्रज्ञा)** की अवधारणा को मूल श्लोकों व हिन्दी अनुवाद सहित स्पष्ट करना तथा उसे आधुनिक मनोविज्ञान विशेषतः फ्रायड, जंग, विलियम जेम्स और समकालीन चेतना-अध्ययन के साथ तुलनात्मक दार्शनिक दृष्टि से विश्लेषित करना है। उपनिषद चेतना को **आत्मा-ब्रह्म की एकात्मक, स्वयंसिद्ध सत्ता** मानते हैं "प्रज्ञानं ब्रह्म", "अहं ब्रह्मास्मि", "तत्त्वमसि" और चेतना के स्तर (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय) के माध्यम से साक्षी-चैतन्य का प्रतिपादन करते हैं। इसके विपरीत, आधुनिक मनोविज्ञान चेतना को अक्सर मन/मस्तिष्क-आधारित प्रक्रिया के रूप में समझता है; फ्रायड का अचेतन-केन्द्रित मॉडल, जंग का सामूहिक अचेतन तथा जेम्स का "चेतना की धारा" इस विमर्श को बहुस्तरीय बनाते हैं। शोध का निष्कर्ष यह है कि उपनिषदों का अंतःअनुभववादी अद्वैत दृष्टिकोण और आधुनिक मनोविज्ञान की अनुभवजन्य व्याख्याएँ भिन्न भाषा में होते हुए भी चेतना की गहराइयों, स्तरों और मानव-परिवर्तन की संभावनाओं पर महत्वपूर्ण संवाद निर्मित करती हैं।

मुख्य शब्द : उपनिषद, चेतना (चित्/प्रज्ञा), आत्मा–ब्रह्म अद्वैत, साक्षीभाव, अवचेतन, सामूहिक अचेतन, समकालीन चेतना अध्ययन।

1. भूमिका : मानव **चेतना** एक ऐसा रहस्य है जिसे समझने के लिए प्राचीन दार्शनिकों से लेकर आधुनिक मनोवैज्ञानिकों तक ने सतत प्रयास किया है। प्राचीन भारतीय उपनिषदों ने आत्मा और ब्रह्म की एकात्मक चेतना का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया, जबकि आधुनिक मनोविज्ञान ने मन और चेतना को मुख्यतः मस्तिष्क एवं व्यवहार के संदर्भ में परखा है। प्रस्तुत शोध पत्र में उपनिषदों में वर्णित चेतना की अवधारणा का विवेचन मूल संस्कृत श्लोकों एवं उनके हिन्दी अनुवाद सहित किया गया है, तथा उसकी तुलना आधुनिक मनोविज्ञान (विशेषतः फ्रायड, जुंग, विलियम जेम्स एवं समकालीन चेतना-अध्ययन) से दार्शनिक दृष्टिकोण द्वारा की गई है। इस तुलनात्मक विश्लेषण से उभरता है कि कैसे पूर्व और

पश्चिम की विचारधाराओं में चेतना को लेकर भिन्न दृष्टिकोण होते हुए भी कुछ मूलभूत साम्य बिंदु मौजूद हैं। शोध-पत्र में विभिन्न उपखंडों के माध्यम से विषय के विभिन्न आयामों पर चर्चा की गई है।

2. उपनिषदों में चेतना की अवधारणा :

उपनिषदों का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य: उपनिषद प्राचीन वैदिक साहित्य के अंतिम भाग हैं जिन्हें वेदान्त कहा जाता है। इन ग्रंथों का मुख्य विषय **आत्मा (आत्मन)** एवं **ब्रह्म** (सर्वव्यापी परमसत्य) है। उपनिषदों के अनुसार आत्मा और ब्रह्म वास्तव में एक ही चेतन तत्व के दो रूप हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है – **"अहं ब्रह्मास्मि"** अर्थात् "मैं (आत्मा) ही ब्रह्म हूँ"। इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् का महावाक्य है – **"तत्त्वमसि"** – "तू (जीवात्मा) वही ब्रह्म है"। माण्डूक्य उपनिषद् घोषित करता है – **"अयमात्मा ब्रह्म"** – "यह आत्मा ही ब्रह्म है"। ऐतरेय उपनिषद् में स्पष्टतः कहा गया – **"प्रज्ञानं ब्रह्म"** अर्थात् "शुद्ध चेतना ही ब्रह्म है"। इन महावाक्यों द्वारा उपनिषद चेतना को परम वास्तविकता के रूप में स्थापित करते हैं – वह चेतना जो प्रत्येक जीव के भीतर आत्मस्वरूप में विद्यमान है और समस्त विश्व का आधार है। उपनिषदों के अनुसार यह ब्रह्म स्वरूप चैतन्य ही सभी प्राणियों की अंतरात्मा है, जो सत्य (अस्तित्व), चित् (शुद्ध चेतना) और आनंद का पूर्ण स्वरूप है। आधुनिक मनोविज्ञान में जहाँ चेतना को अक्सर मस्तिष्क की उत्पत्ति माना जाता है, वहीं वेदांत दार्शनिक इसे मूलभूत सत्ता के रूप में देखता है।

चेतना का स्वरूप एवं स्तर: उपनिषदों ने जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं के पार जाकर चौथे लोक को पहचाना है जिसे तुरीय कहा जाता है। माण्डूक्य उपनिषद् में चेतना के चार अवस्थाओं का विशद वर्णन मिलता है – (1) **जाग्रत** अवस्था जिसमें मन बाह्य विषयों में प्रवृत्त रहता है; (2) **स्वप्न** अवस्था जिसमें सूक्ष्म मन आंतरिक वृत्तियों से रचित स्वप्न जगत में रहता है; (3) **सुषुप्ति** (गहरी निद्रा) जिसमें मन-वृत्तियाँ लीन हो जाती हैं और केवल अविद्या जन्य आनन्द का अनुभव रह जाता है; तथा (4) **तुरीय** या चतुर्थ अवस्था जो शुद्ध चेतना की अवस्था है। माण्डूक्य कहता है: "प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवम् अद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः", अर्थात् तीनों प्रपंचों से परे, शान्त, कल्याणमय, अद्वैत चतुर्थ को (तुरीय को) ही आत्मा कहा जाता है और वही ज्ञेय है। यह तुरीय अवस्था निरीक्षक (साक्षी) की स्थिति है – जहां आत्मा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का साक्षी मात्र होता है। उपनिषदों में आत्मा को द्रष्टा (देखने वाला), साक्षी (निर्लिप्त साक्षी), क्षेत्रज्ञ (क्षेत्र का जानने वाला) आदि कहा गया है, जो संकेत करता है कि चेतना स्वयं स्वतंत्र, स्वयंसिद्ध सत्य है जो मन-बुद्धि के उपकरणों से भिन्न है। कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता से आत्मस्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं: "अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्मा" – आत्मा अणु से भी सूक्ष्म तथा महान से भी महान है, जो सभी प्राणियों के हृदय की गुफा में स्थित है। आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है – वह नित्य चैतन्य स्वरूप है (कठोपनिषद् 2.18)। श्वेताश्वतर उपनिषद् में एक ही चेतन देव तत्व की सर्वव्यापी उपस्थिति को स्वीकारते हुए कहा गया: "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा" – एक ही ईश्वर सब प्राणियों में सूक्ष्म रूप से छिपा हुआ है, जो सबका अंतरात्मा है (श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.11)। इस प्रकार, उपनिषदों का निष्कर्ष है कि चेतना कोई विभक्त या गौण गुण नहीं, अपितु सर्वात्मका वास्तविकता है जो विश्व के प्रत्येक कण में व्याप्त है – "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (छान्दोग्य 3.14.1) अर्थात् "निश्चित ही यह समस्त जगत ब्रह्मस्वरूप है"।

आत्मानुभूति और साक्षात्कार: उपनिषदों में ज्ञान का अर्थ बौद्धिक जानकारी नहीं, बल्कि आत्मानुभूति है। केन उपनिषद् आरंभ में ही प्रश्न उठाता है: "केनेषितं पतति प्रेषितं मनः" – "किसकी प्रेरणा से मन इंद्रियों सहित कर्म करता है?" यह प्रश्न संकेत देता है कि इंद्रिय और मन से परे कोई चेतन शक्ति है जो इन्हें संचालित करती है। उत्तर में श्रुति कहती है: "यः मनसा न मनुते येनाहुर् मनो मतम्" – "जिसे मन नहीं समझ सकता, बल्कि जिसकी शक्ति से मन समझता है, उसे ब्रह्म जानो" (केन उपनिषद् 1.5)। यानी ब्रह्म स्वयं ज्ञान (चेतना) का स्वभाव है, कोई ज्ञेय वस्तु नहीं। उपनिषद

शिक्षकों ने आत्म-साक्षात्कार को परम लक्ष्य बताया है: "नायमात्मा प्रवचननेन लभ्यः... यमेवेष वृणुते तेन लभ्यः" (कठोपनिषद् 1.2.23) – यह आत्मा न तर्क से, न श्रवण से प्राप्त होता है, बल्कि उसी को प्राप्त होता है जिसे आत्मा स्वयं चुन लेता है, जो इंगित करता है कि आतंरिक ध्यान और साधना द्वारा ही चेतना की वास्तविक अनुभूति संभव है। आत्मज्ञान को प्राप्त पुरुष के बारे में मुण्डक उपनिषद् में कहा गया है: "भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः" – आत्म-साक्षात्कार होते ही हृदय की गांठ (अज्ञान) कट जाती है और सारे संशय दूर हो जाते हैं (मुण्डक उपनिषद् 2.2.8)। स्पष्ट है कि उपनिषदों में **चेतना** को सर्वोच्च सत्ता और मनुष्य के मुक्तिस्वरूप आत्मा के रूप में दर्शाया गया है। आत्मा की यह चेतना सत्-चित्-आनंद (सत्ता, ज्ञान और आनंद) से परिपूर्ण है। उपनिषद कहते हैं कि चेतना आत्मस्वरूप में निहित अनन्त आनंद है – "रसो वै सः ... आनंदी भवति" (तैत्तिरीय उपनिषद् 2.7) – "ब्रह्म रसस्वरूप है... उस रस (आनंद) को प्राप्त करके जीव आनंदित हो जाता है"। अतः मानव व्यक्तित्व की वास्तविकता न शरीर, न मन, न बुद्धि है, बल्कि इनके आधारभूत साक्षी-चेतना है। यदि चेतना को हटा दिया जाए तो कुछ भी शेष नहीं बचता – "चेतना का निषेध अन्य सभी चीज़ों के निषेध के समान है"। आधुनिक विज्ञान जहाँ चेतना को मस्तिष्क की सक्रियता के एक उत्पाद के रूप में देखता है, वहीं उपनिषद इसे कारण और आधार के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपनिषदों ने पंचकोश सिद्धांत द्वारा मानव व्यक्तित्व के आवरणों का वर्णन किया। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार स्थूल शरीर से लेकर सूक्ष्मतम आनंद तक पाँच कोश (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय) आत्मा को आवृत करते हैं। इनमें अन्नमय (शारीरिक) सबसे स्थूल है और विज्ञानमय व आनंदमय सूक्ष्मतर हैं। सबसे भीतर आनंदमय कोष में आत्मा की चिंगारी विद्यमान है। यह आत्मा की चेतना ही जीवन का आधार है – "प्रज्ञानं यज्ञं प्रजानन्" (तैत्तिरीय उप. 3.11) – आत्मस्वरूप प्रज्ञा (चेतना) समस्त प्राणियों की उत्पत्ति और आधार है। इस प्रकार उपनिषद मानव को बाह्य से अंतर में यात्रा करने का संदेश देते हैं: मन, बुद्धि को पार कर आत्मचेतना का अनुभव ही सत्य-ज्ञान है। उपनिषदीय शिक्षा का सार है – **आत्मदर्शन ही समस्त ज्ञान का प्रयोजन**।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उपनिषदों ने चेतना को आध्यात्मिक और दार्शनिक ऊँचाइयों पर ले जाकर परम तत्त्व के रूप में स्थापित किया। आत्मा-परमात्मा की एकता (अद्वैत) पर जोर देते हुए उन्होंने अनुभूति-आधारित ज्ञान पर बल दिया। यह दृष्टिकोण विशुद्ध अंतरानुभव और आध्यात्मिक साधना पर आधारित है, जो आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भिन्न होते हुए भी चेतना की प्रकृति पर मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

3. आधुनिक मनोविज्ञान में चेतना की समझ :

प्रारंभिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण: 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारंभ में आधुनिक मनोविज्ञान ने एक वैज्ञानिक अनुशासन के रूप में जन्म लिया। शुरुआत में विलियम जेम्स जैसे विचारकों ने चेतना को मन का प्रवाह बताया – एक निरंतर बहने वाली अनुभवों की धारा जो क्षण-प्रतिक्षण बदलती रहती है। जेम्स ने चेतना को व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और संवेदनाओं के सतत प्रवाह के रूप में देखा और इस धारणा को चुनौती दी कि मन स्थिर तत्वों में विभाजित किया जा सकता है। उन्होंने प्रतिपादित किया कि हमारी वर्तमान जाग्रत चेतना समस्त संभावित चेतना के संसारों में से केवल एक है, और अन्य चेतना-लोक भी विद्यमान हो सकते हैं जो वास्तविक एवं अर्थपूर्ण अनुभव समाहित किए हुए हैं। जैसा कि जेम्स लिखते हैं: "हमारी वर्तमान चेतना की दुनिया अनेक चेतना की दुनिया में से केवल एक है, और उन दूसरी दुनियाओं के अनुभव भी हमारे जीवन के लिए महत्त्व रखते हैं" (जेम्स 519) – यह स्वीकारोक्ति उपनिषदों की उस भावना से मेल खाती है जहाँ जाग्रत के पार स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय जैसी अवस्थाओं की बात की गई है। जेम्स ने रहस्यपूर्ण या आध्यात्मिक चेतना-अवस्थाओं (जैसे समाधि या भाव-विभोर अनुभव) को भी गंभीरता से लिया और कहा कि दार्शनिक इन्हें शब्दों में पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकते, फिर भी ये अनुभव वास्तविक

और मूल्यवान हैं। जेम्स के अनुसार दर्शन बुद्धि के शब्दजाल में उलझ सकता है जबकि सचाई का स्रोत अक्सर प्रत्यक्ष अनुभव के रूप में फूट पड़ता है। इस प्रकार, विलियम जेम्स ने व्यक्तिपरक अनुभव की भूमिका पर ज़ोर दिया, जो उपनिषदों के आतंरिक अनुभववादी रुख के निकट है।

फ्रायड का मनोविश्लेषण एवं अचेतन: आधुनिक मनोविज्ञान में सिगमंड फ्रायड वह मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने चेतन और अवचेतन मन की द्वि-स्तरीय संरचना प्रस्तुत की। फ्रायड से पहले चेतना मनोविज्ञान का लगभग पर्याय थी, किंतु फ्रायड ने दिखाया कि मानसिक जीवन का बहुत बड़ा भाग अचेतन स्तर पर संचालित होता है। फ्रायड ने मानव मन की तुलना हिमखंड से की – जिसका केवल छोटा सा अंश जल के ऊपर (चेतन मन) होता है, शेष विशाल भाग जल के नीचे अदृश्य (अवचेतन) रूप में रहता है। उन्होंने मन को तीन भागों में बाँटा – **इड** अर्थात् मूल इच्छाओं एवं प्राकृतिक प्रवृत्तियों का अचेतन भंडार, **ईगो** अर्थात् वास्तविकता से सामंजस्य बैठाने वाला चेतन/अर्द्धचेतन आत्म और **सुपरईगो** अर्थात् नैतिक मूल्य एवं आदर्श जो मुख्यतः अचेतन रूप से व्यक्ति पर नियंत्रण रखते हैं। फ्रायड के अनुसार हमारी अधिकांश भावनाएँ, इच्छाएँ और स्मृतियाँ अवचेतन में दबी रहती हैं और स्वयं हमें उनकी सीधी जानकारी नहीं होती। फ्रायड ने कहा है: "अवचेतन ही वास्तविक मानसिक सत्य है; अपने भीतर वह हमारे लिए उतना ही अज्ञात है जितना बाहरी भौतिक जगत" (अनु. – "अचेतन ही वास्तविक मानसिक यथार्थ है; अपनी आंतरिकतम प्रकृति में वह हमारे लिए उतना ही अज्ञात है जितना बाह्य जगत का यथार्थ।" (फ्रायड 613)). फ्रायड के इस कथन में हम देखते हैं कि वे अवचेतन को मन की सच्ची वास्तविकता कहते हैं, जो हमारी चेतन जागरुकता से कहीं विशाल परिधि घेरती है। इस प्रकार फ्रायड ने चेतना के सीमित क्षेत्र से मनोविज्ञान का ध्यान व्यापक अवचेतन क्षेत्र की ओर मोड़ा। उन्होंने यह भी माना कि चेतन में आने से पूर्व हर मानसिक सामग्री एक अवचेतन अवस्था से गुजरती है। जाग्रत विचार तो केवल अंतिम उत्पाद हैं; वास्तविक मानसिक प्रक्रियाएँ पर्दे के पीछे अवचेतन स्तर पर चलती रहती हैं। फ्रायड के मनोविश्लेषण में धर्म या आत्मा-चेतना को स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिया गया, बल्कि धर्म को उन्होंने कभी-कभी सामूहिक भ्रम की संज्ञा दी। उनके मुताबिक आध्यात्मिक अनुभव भी व्यक्ति के अवचेतन मानसिक संघर्षों या कामनाओं का रुपांतरण मात्र हैं। स्पष्टतः, फ्रायड की दृष्टि विशुद्ध भौतिकवादी और यांत्रिक थी – मानव को उन्होंने मूलतः जैविक प्रवृत्तियों (काम एवं क्रोध) से संचालित एक प्राणी माना। उपनिषदीय चेतना की तुलना में फ्रायड का विचार काफी भिन्न था: उपनिषद जहाँ चेतना को दिव्यता के स्तर तक उठाते हैं, फ्रायड के मनोविज्ञान में चेतना मनुष्य के मनो-यंत्र की एक आंशिक एवं सतही अवस्था भर है, जिसके नीचे द्वन्द्वात्मक वासनाओं का अंधेरा समुद्र फैला हुआ है।

जुंग का सामूहिक अचेतन एवं आत्म-सिद्धि: कार्ल जुंग, फ्रायड के शिष्य-परंतु-भिन्न मत वाले मनोवैज्ञानिक, ने अवचेतन की परिधि को और विस्तार देकर **सामूहिक अचेतन** की अवधारणा प्रस्तुत की। जुंग के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक व्यक्तिगत अवचेतन (उसके अपने दबी-छिपी स्मृतियाँ, इच्छाएँ) के अतिरिक्त एक व्यापक सामूहिक अचेतन भी होता है जो समस्त मानव जाति का साझा मनोवैज्ञानिक विरासत है। इस सामूहिक अचेतन में मानव-मात्र के सांस्कृतिक अनुभवों से निष्पन्न आर्कटाइप या आदि-प्रतीक निहित रहते हैं – जैसे माँ, नायक, बुद्धिमान वृद्ध, छाया इत्यादि के प्रतीक, जो विश्व भर की मिथकों और सपनों में समान रूप से प्रकट होते हैं। जुंग के शब्दों में: "हमारी तत्कालीन चेतना (व्यक्तिगत चेतन) के अतिरिक्त एक दूसरी मनोप्रणाली भी अस्तित्व में है जो सामूहिक, सार्वभौमिक और व्यक्तिनिरपेक्ष प्रकृति की है, और जो हर व्यक्ति में समान होती है"। सामूहिक अचेतन व्यक्तिगत अनुभव से उत्पन्न नहीं होता, बल्कि आनुवंशिक रूप से हमें प्राप्त होता है; यह हमारे पूर्वजों के संपूर्ण मनो-अनुभवों का संचय है जो जन्मजात रूप से मानस में मौजूद रहता है। जुंग मानते थे कि सामूहिक अचेतन व्यक्ति के विचारों-व्यवहार पर गहरा

प्रभाव डालता है, भले ही व्यक्ति इसके अस्तित्व से अनजान रहे। यह अवधारणा उपनिषदों के "विराट चेतना" या ब्रह्म से कुछ हद तक साम्य रखती है, हालाँकि जुंग ने इसे आध्यात्मिक ना कहकर मानस की विरासत कहा।

जुंग फ्रायड की भांति धर्म-अनुभव को मनोविकृति नहीं मानते थे, बल्कि उन्होंने पूर्वी दर्शन का अध्ययन कर आत्मिक अनुभवों को मनोविज्ञान में शामिल करने का प्रयास किया। वे हिंदू उपनिषदों से विशेष रूप से प्रभावित थे। अपने लेखन में जुंग ने उपनिषदों को अनेक बार उद्धृत किया और आत्मा की जो संकल्पना विकसित की, उसमें उपनिषदों के आत्मा-ब्रह्म की एकत्व के विचार की झलक थी। उन्होंने कहा: "जो बाहर देखता है, वह स्वप्न देखता है; जो भीतर देखता है, वह जाग जाता है" – यह उक्ति जुंग की है जो उपनिषदों की अंतर्मुखी दृष्टि का ही समर्थन करती है। जुंग के आत्मा नामक संकल्पना को वे मानो सत्य-अस्तित्व (ब्रह्म) का मनोवैज्ञानिक प्रत्यय मानते थे। एक खत में उन्होंने स्वीकार किया कि उपनिषदीय ऋषियों की तरह वे भी मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर परमात्म सत्ता का अंश निहित है। वास्तव में, जुंग ने आत्मा-स्वरूप आत्मा को मन के केन्द्र में स्थित परम समग्रता के प्रतीक के रूप में परिभाषित किया, जो काफी कुछ हिंदू दर्शन के आत्मतत्त्व से मेल खाता है। यद्यपि जुंग ने पूर्वी तत्वज्ञान का अपने तरीके से विश्लेषण किया और कई बार "ब्रह्म" जैसे अवधारणाओं को लैबिडिनल ऊर्जा या मनोवैज्ञानिक मूलरूप आदर्श के रूप में पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया, फिर भी उनका कार्य पश्चिम में चेतना की चर्चा को भौतिक मन-तक सीमित न रखकर व्यापक आध्यात्मिक संदर्भ देने में सफल रहा। सामूहिक अचेतन के माध्यम से जुंग ने यह इंगित किया कि हमारी चेतना व्यक्तिगत चेतना तक सीमित नहीं है, बल्कि एक महान् सामूहिक चेतना का अंग है – ठीक वैसे ही जैसे उपनिषद प्रत्येक आत्मा को ब्रह्म का अंश बताते हैं। जुंग का विचार था कि जीवन का परम लक्ष्य स्व-प्रत्ययीकरण द्वारा आत्म-संतुलन एवं पूर्णता प्राप्त करना है, जो मनोवैज्ञानिक भाषा में उसी अवस्था की ओर संकेत करता है जिसे योग एवं वेदांत में आत्मसाक्षात्कार कहा गया है। इस प्रकार जुंग ने मानव मन में गहराई तक झाँककर वहां छिपी सार्वभौमिक चेतना की झलक पाने की चेष्टा की। यह प्रयास पूर्वी और पश्चिमी सोच के बीच सेतु का कार्य करता है।

अन्य समकालीन दृष्टिकोण: फ्रायड और जुंग के बाद मनोविज्ञान कई धाराओं में विकसित हुआ। कुछ उल्लेखनीय प्रवृत्तियों पर संक्षिप्त नज़र डालें:

- **व्यवहारवाद:** जॉन वॉटसन और बी.एफ. स्किनर जैसे व्यवहारवादियों ने तो लगभग **चेतना** की अवधारणा से ही इंकार कर दिया था। उनका जोर केवल दिखाई देने वाले व्यवहार और उद्दीपन-प्रतिक्रिया के नियमन पर था। मानव को उन्होंने चैतन्य प्राणी नहीं, बल्कि परिस्थितियों द्वारा नियंत्रित एक यंत्रवत् इकाई के रूप में देखा। स्पष्टतः, यह दृष्टिकोण उपनिषदों के आत्मा-चेतन दृष्टिकोण से बिलकुल विपरीत था।
- **मनोविश्लेषण के पश्चात्वर्ती संशोधन:** फ्रायड के बाद आए नव-फ्रायडपंथियों (एड्लर, एरिक फ्रॉम, कार्ल हॉर्नाई आदि) ने अवचेतन के अलावा सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों को शामिल किया, पर मूल मॉडल चेतना को गौण ही मानता रहा।
- **मानवतावादी मनोविज्ञान:** 20वीं सदी के मध्य में अब्राहम मैस्लो, कार्ल रॉजर्स जैसे मनोवैज्ञानिकों ने मानव प्रवृत्तियों के अधिक सकारात्मक और **आत्मविकासपरक** पहलुओं पर जोर दिया। इन्होंने **स्व-अभिव्यक्ति** और **स्व-अधिकारीकरण** को मनुष्य की उच्चतम मनोवैज्ञानिक आवश्यकता बताया। मस्लो के आवश्यकता-पिरामिड में सबसे शिखर पर आत्मसिद्धि का लक्ष्य रखा गया, जो व्यक्ति अपनी समस्त क्षमताओं का विकास कर प्राप्त करता है। यह आत्मसिद्धि वस्तुतः उस "पूर्ण मानव" की अवधारणा है जिसकी झलक वेदांत के चरम पुरुषार्थ – मोक्ष में मिलती है। उपनिषदों में वर्णित आनंदमय आत्मा की प्राप्ति को ही

मनोवैज्ञानिक भाषा में आत्मसिद्धि कहा जा सकता है। मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों ने प्रेम, करुणा, रचनात्मकता, अध्यात्म जैसे गुणों को मनुष्य के विकासक्रम में महत्वपूर्ण माना, जो कि पूर्व में मुख्यधारा मनोविज्ञान से उपेक्षित थे। मैस्लो ने अनेक "उच्च अनुभवों" का वर्णन किया जो व्यक्ति को गहन तृप्ति व अर्थ प्रदान करते हैं – ये अनुभव ध्यान, प्रार्थना या रचनात्मक लयों में हो सकते हैं, जिनका चरम स्वरूप आध्यात्मिक या रहस्यमय अनुभव हो सकता है। ये वर्णन उपनिषदों के साक्षात्कार-समाधि अनुभवों से साम्य रखते हैं। एक दिलचस्प समानता यह है कि मस्लो की आवश्यकता श्रेणी और तैत्तिरीय उपनिषद के पंचकोशों में गहरा सामंजस्य देखा गया है। भोजन, वस्त्र जैसे शारीरिक आवश्यकता (मस्लोव के पिरामिड का आधार) अन्नमय कोश से मिलती है; सुरक्षा व प्रेम की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ प्राणमय एवं मनोमय कोश से; ज्ञान और आत्म-सम्मान की आवश्यकताएँ विज्ञानमय कोश से; तथा आत्मसिद्धि का शिखर आनंदमय कोश से तुलनीय है। इस प्रकार मानवतावादी मनोविज्ञान ने आधुनिक संदर्भ में बहुत हद तक वही खोज की कि व्यक्ति के भीतर एक उच्चतर चेतना या संभावना निहित है जिसे विकसित करना जीवन का महान ध्येय हो सकता है।

- **कॉग्निटिव एवं तंत्रिका-विज्ञान:** बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में संज्ञानात्मक विज्ञान और तंत्रिका-मनोरचना ने चेतना को नए आयाम से देखना शुरु किया। मस्तिष्क स्कैन, ईईजी, एफएमआरआई आदि उपकरणों से चेतना के न्यूरल कॉरलेट्स खोजे जाने लगे। **चेतना के स्तर** (जाग्रति, सपने, गहरी नींद, कोमा) को मस्तिष्कीय गतिविधि से जोड़कर समझने की चेष्टा हुई। हालाँकि, यह दृष्टिकोण मुख्यतः चेतना को दिमाग की उत्पत्ति मानता है और अनुभूतियों को तंत्रिका संकेतो में मापने की कोशिश करता है। वैज्ञानिकों ने अब तक मस्तिष्क में कुछ नेटवर्क (जैसे जालीदार सक्रिय प्रणाली) को जाग्रत चेतना से संबद्ध पाया है, किंतु स्वयं **अनुभूति का रहस्य** सुलझ नहीं सका है। दार्शनिक डेविड चाल्मर्स ने इसे "चेतना की कठिन समस्या" कहा है – अर्थात् हम यह तो माप सकते हैं कि जाग्रति में कौन से न्यूरॉन सक्रिय हैं, पर यह नहीं समझा पाए हैं कि न्यूरॉनों की विद्युत-रासायनिक क्रिया से अनुभव का निजी एहसास कैसे उत्पन्न होता है। इस विषय में आज के कई वैज्ञानिक मानते हैं कि शायद चेतना को समझने के लिए चेतना को ही मूल अस्तित्व मानना पड़े – यह विचार अद्वैत वेदांत से अद्भुत मेल खाता है। कुछ समकालीन विचारकों ने क्वांटम भौतिकी की रहस्यमयता तथा योग-वेदांत की एकात्मवादिता के बीच संबंध जोड़े हैं। उदाहरणस्वरूप, मनोवैज्ञानिक दाना ज़ोहार ने भौतिकी की नई व्याख्याओं पर चर्चा करते हुए पूछा है: "हम अपने मानवीय अनुभव का अर्थ इस यांत्रिक दृष्टिकोण में कहाँ खोजें?" – यह प्रश्न चेतना की खोज को विज्ञान से दर्शन की ओर मोड़ता है। वर्तमान में **चेतना अध्ययन** एक बहुविषयी क्षेत्र बन गया है जहाँ न्यूरोसाइंस, मनोविज्ञान, दर्शन और आध्यात्मिकता मिलकर काम कर रहे हैं। मेडिटेशन (ध्यान) और माइंडफुलनेस को मस्तिष्क तथा मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में बड़े पैमाने पर शोधों में शामिल किया जा रहा है, जिसके निष्कर्ष पुनः पूर्व के योगियों के अनुभव को वैज्ञानिक पुष्टि देते प्रतीत होते हैं। इस प्रकार, आधुनिक मनोविज्ञान ने चेतना को कई नजरियों से परखा: कहीं उसे सिरे से नकारा गया, तो कहीं उसे मानसिक स्वास्थ्य व आत्मविकास के केंद्र में रखकर देखा गया। लेकिन किसी न किसी रूप में आज की वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक चिंतनधारा भी उस बिंदु पर आ पहुँची है जहाँ चेतना मात्र एक अनुसंधान वस्तु नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व का मूलाधार बनकर उभरती है।

4. उपनिषदों और आधुनिक मनोविज्ञान का तुलनात्मक विश्लेषण : उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता

है कि उपनिषदों और आधुनिक मनोविज्ञान के बीच **चेतना** को लेकर दृष्टिकोण भिन्न होते हुए भी कुछ अंतर्निहित समानताएँ हैं। एक ओर उपनिषद चेतना को परमात्मा और आत्मा के समतुल्य मानते हैं, दूसरी ओर आधुनिक मनोविज्ञान (विशेषकर प्रारंभिक वैज्ञानिक विचार) ने चेतना को मस्तिष्क-व्युत्पन्न मानसिक अवस्था माना। निम्न बिंदुओं पर दोनों दृष्टिकोणों की तुलना करते हैं:

- **चेतना का दार्शनिक स्तर:** उपनिषदों में चेतना (चित्) को ब्रह्म के मूल लक्षण के रूप में परिभाषित किया गया – "सत्-चित्-आनंद" में चित् ब्रह्म की चेतनात्मक प्रकृति दर्शाता है। चेतना स्वयं में स्वतन्त्र, स्वयंसिद्ध सत्ता है। इसके विपरीत, आधुनिक मनोविज्ञान (विशेषकर 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक) में चेतना को अक्सर अन्य मानसिक घटनाओं का उप-उत्पाद माना गया। अर्थात् चेतना मस्तिष्क की जैव-रासायनिक क्रियाओं से उभरती है और स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखती। फिर भी, 20वीं सदी के मध्य से दार्शनिकों-मनोवैज्ञानिकों ने यह महसूस किया कि चेतना की अनुभूति को पूर्णतः भौतिक समीकरणों में नहीं समझाया जा सकता। यह ठीक वही बात है जो उपनिषदों ने आदि से कही – ब्रह्म (चेतना) शब्दातीत, इन्द्रियातीत है (केन उप. 1.3-1.8) । आज "हार्ड प्रॉब्लम ऑफ़ कॉन्शियसनेस" के रूप में यह स्वीकार किया जा रहा है कि चेतना को मात्र वैज्ञानिक उपकरणों से नहीं, अनुभव के स्तर पर भी समझना होगा, जो उपनिषदों की अंतःप्रज्ञा-पद्धति के महत्व को रेखांकित करता है।
- **स्तरीकरण की समानता:** उपनिषदों ने मानव चेतना के विभिन्न स्तर बताए – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय – जिनमें आत्मा क्रमशः बाह्य विषयों से सूक्ष्मतर अवस्था में प्रवेश करती है। आधुनिक मनोविज्ञान में भी चेतना की परतों का विचार मिलता है: फ्रायड का चेतन-प्राक्चेतन-अवचेतन मॉडल हो या जुंग का व्यक्तिगत अचेतन-सामूहिक अचेतन का भेद, ये सभी इस धारणा पर आधारित हैं कि मन के सतह पर प्रकट होने वाली चेतना के नीचे गहरे स्तरों पर मानसिक क्रियाएँ चलती हैं। फर्क बस इतना है कि उपनिषदों में गहरी सुषुप्ति (गहन निद्रा) को अज्ञान आवरण युक्त आनंद की अवस्था कहा गया और उसके परे तुरीय को शुद्ध प्रकाश माना गया, जबकि फ्रायड के मॉडल में गहरी निद्रा या अचेतन में दबी अवस्था सिर्फ इच्छाओं-वासनाओं का भंडार मानी गई। एक ओर उपनिषद कहते हैं "सुषुप्ति में तू स्वतः आनंदमय है क्योंकि मन-वृत्तियों का लय हो जाता है, पर तू उसे जान नहीं पाता" - यह आत्मा की चैतन्य उपस्थिति को इंगित करता है जो सुषुप्ति में भी अवस्थित रहती है (प्रमाण है कि जागने पर हम कहते हैं "मैं सुखपूर्वक सोया")। दूसरी ओर, फ्रायड के अनुसार सुषुप्ति मनःप्रक्रियाओं का निषेध (सेंसरशिप) है, जिसमें दबी सामग्री स्वप्न के रूप में कभी-कभार प्रकट होती है। इस भिन्नता के बावजूद दोनों सहमत हैं कि चेतना के अनुभव विविध स्तरों पर होते हैं और सतही जाग्रत अवस्था संपूर्ण सचेतन अनुभव को निरूपित नहीं करती।
- **व्यक्तिपरक बनाम वस्तुपरक दृष्टिकोण:** उपनिषदों की पद्धति पूर्णतः आत्मानुभव पर आधारित है – सत्य को जानने हेतु साधक को स्वयं अपनी चेतना में गहराई तक उतरना पड़ता है। श्रवण, मनन, निदिध्यासन (सुनना, विचारना, ध्यान में लीन होना) के माध्यम से ज्ञान को प्रत्यक्ष अनुभव में रूपांतरित करने की प्रक्रिया अपनाई जाती है। इसके उलट, आधुनिक मनोविज्ञान ने लंबे समय तक चेतना के वस्तुपरक अध्ययन पर ज़ोर दिया। प्रयोगशालाओं में प्रतिक्रियाओं को मापा गया, आत्मअनुभव को सब्जेक्टिव कहकर अविश्वसनीय माना गया। परिणामस्वरूप, प्रारंभिक वैज्ञानिक मनोविज्ञान में चेतना का अध्ययन हाशिये पर चला गया (व्यवहारवाद के युग में तो लगभग लुप्त हो गया था)। पर आज पुनः पहिया घूम रहा है – मस्तिष्क वैज्ञानिक समझ रहे हैं कि चेतना के अध्ययनों में

व्यक्ति के प्रथम-व्यक्ति अनुभव को अनदेखा नहीं किया जा सकता। ध्यान एवं साक्षीभाव जैसी विधियों को वैज्ञानिक शोध का हिस्सा बनाकर आधुनिक शोधकर्ता भी अनुभूति को भीतर से जानने की कोशिश कर रहे हैं। यह वही सिद्धांत है जो उपनिषदों में प्रतिपादित था – आत्मानं विद्धि (अपने आत्मस्वरूप को जानो)।

- **उद्देश्य या लक्ष्य की तुलना:** उपनिषदों का अंतिम लक्ष्य मोक्ष या आत्मसाक्षात्कार है – जिससे जन्म-मृत्यु के बंधन कट जाते हैं और जीव परम आनंद को प्राप्त होता है। यह एक स्पष्ट आध्यात्मिक और अस्तित्वगत लक्ष्य है, जिसमें व्यक्ति स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान का मूल लक्ष्य इतना ऊँचा नहीं था; उसका आरंभिक उद्देश्य मानसिक रोगों का उपचार और व्यवहार का पूर्वानुमान/नियंत्रण भर था। लेकिन मानवतावादी और अस्तित्ववादी मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के अधिकतम विकास को मनोविज्ञान का केंद्र बनाकर इसे एक तरह से सांसारिक मोक्ष के लक्ष्य से जोड़ा। इस दृष्टि में, मनोविज्ञान और योग-वेदांत फिर से करीब आते दिखते हैं – दोनों स्वीकारते हैं कि व्यक्ति के भीतर एक अनंत संभावना है और एक उच्चतर अवस्था तक पहुँचकर संतोष, आनंद एवं शांति पाई जा सकती है। रॉजर्स के पूर्णतः क्रियाशील व्यक्ति या मस्लो के आत्म-अधिकारीकृत व्यक्ति के चित्रण में एक प्रकार की आत्मदर्शी चेतना का भाव है, जो उपनिषदों के "स्थितप्रज्ञ" या मुक्त आत्मा के समानांतर रखा जा सकता है। अंतर यह है कि मनोविज्ञान इसे अध्यात्म की भाषा में नहीं प्रस्तुत करता, बल्कि मानवीय मूल्य-पूर्णता की भाषा में।
- **व्यष्टि बनाम समष्टि चेतना:** वेदांत कहता है कि प्रत्येक जीवात्मा (व्यष्टि) स्वयं ब्रह्मांडीय आत्मा (समष्टि) का अभिन्न अंश है – "यथापिंडेतथाब्रह्मांडे" की उक्ति से लेकर "तत् त्वम् असि" तक यही शिक्षा है। जुंग के सामूहिक अचेतन या ट्रांसपर्सनल मनोविज्ञान के कुछ सिद्धांत (जैसे अब्राहम मैस्लो, स्टैनीस्लाव ग्रोफ़ आदि के कार्य) यह संकेत देते हैं कि व्यक्तिगत चेतना किसी बड़ी सामूहिक या ब्रह्मांडीय चेतना का हिस्सा हो सकती है। अंतर इतना है कि वे इसे एक मनोवैज्ञानिक तथ्य के रूप में लेते हैं जबकि उपनिषद इसे आन्टोलोजिकल सत्य के रूप में – अर्थात् जुंग कहेंगे कि हर व्यक्ति के सपनों-मनोदृश्यों में कुछ सार्वभौमिक तत्व होते हैं, जबकि उपनिषद कहेंगे कि हर व्यक्ति का आत्मा सर्वत्र व्यापी ब्रह्म का ही प्रतिबिंब है। दोनों का आशय साम्य रखते हुए भी अभिव्यक्ति भिन्न है। लेकिन यह विचार कि "हम सब गहराई में जुड़े हुए हैं", पश्चिम में भी स्वीकार्यता पा रहा है – चाहे उसे सामूहिक अचेतन कहें या एकीकृत चेतना क्षेत्र की उभरती वैकल्पिक परिकल्पना। वास्तव में, पदार्थ-विज्ञान के कुछ समकालीन सिद्धांत (जैसे कुछ वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तावित क्वांटम चेतना या सर्वचेतनवाद अर्थात् सर्वत्र चैतन्यता) भी उसी निष्कर्ष की ओर जाते दिखते हैं जिसकी झलक उपनिषदों के सूत्र देते हैं।
- **धार्मिक/आध्यात्मिक अनुभव का मूल्यांकन:** उपनिषदों के लिए तो पूरा दर्शन ही अध्यात्ममय है – आत्मा-परमात्मा, मोक्ष, ध्यान-समाधि इनके मूल तत्त्व हैं। आधुनिक मनोविज्ञान विशेषकर फ्रायड के समय तक धर्म या अध्यात्म को वैज्ञानिक अध्ययन के योग्य विषय नहीं मानता था (फ्रायड ने तो धर्म को भ्रम और ईश्वर-प्रतिमा को मानवीय पिता-छवि का प्रक्षेपण कहा था)। किंतु जुंग ने धार्मिक प्रतीकों और रहस्यानुभवों को मनोविज्ञान में जगह दी, विलियम जेम्स ने वैराइटीज़ ऑफ़ रिलीजस एक्सपीरियंस ग्रंथ में अनेक आध्यात्मिक अनुभवों का विश्लेषण किया, और आज ट्रांसपर्सनल मनोविज्ञान नामक शाखा खुलकर ध्यान, योग, आध्यात्मिक जागरण जैसी अनुभूतियों को मानसिक स्वास्थ्य और विकास के लिए महत्त्वपूर्ण मानती है। स्पष्ट है कि पश्चिमी मनोविज्ञान ने धीरे-धीरे यह समझ विकसित की कि मानव चेतना के आयाम केवल तर्कसंगत

विचार और बाह्य व्यवहार तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उन रहस्यमय गहराइयों तक जाते हैं जिन्हें पूर्व के दार्शनिकों ने साधना द्वारा खोजा था। आज अनेक चिकित्सक-मनोवैज्ञानिक ध्यान को तनाव-निवारण और आत्म-बोध के साधन के रूप में उपयोग करते हैं। यह प्रवृत्ति उसी दिशा में है जिसका संकेत उपनिषदों ने दिया था – "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" (ब्रह्मबिन्दु उपनिषद् 2) – मन ही बंधन और मुक्ति का कारण है। अतः मन को साधकर, उसकी गहराइयों में अवस्थित चेतना से जुड़कर मोक्ष (या आधुनिक संदर्भ में पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य एवं क्षमता-विकास) पाया जा सकता है।

इन तुलनाओं से यह निष्कर्ष उभरता है कि **उपनिषदों का चेतना-दर्शन और आधुनिक मनोविज्ञान** एक-दूसरे के विरोधी न होकर पूरक हैं। उपनिषद जहाँ हमें चेतना की आध्यात्मिक अखंडता का बोध कराते हैं, वहीं मनोविज्ञान हमें चेतना के कार्यकरण और मनोदैहिक संरचना की वैज्ञानिक समझ देता है। एक व्यापक दार्शनिक दृष्टिकोण से देखें तो उपनिषदों का अद्वैत वेदान्त मानव मन को उसके शाश्वत आधार (ब्रह्म) में स्थिर करने का प्रयास है, जबकि मनोविज्ञान मानवीय चेतना को अनुभवजन्य पद्धति से विश्लेषित कर रहा है। दोनों का मिलन मानव चेतना के रहस्य को सुलझाने में अग्रणी सिद्ध हो सकता है। जैसा कि मनोचिकित्सक एरिक फ्रॉम ने भी संकेत किया था, पूर्व और पश्चिम की बुद्धिमत्ता का समन्वय व्यक्ति की आंतरिक पूर्णता के लिए अत्यंत फलदायी हो सकता है।

5. निष्कर्ष : उपनिषदों में निरूपित चेतना की अवधारणा और आधुनिक मनोविज्ञान की चेतना संबंधी समझ के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि चेतना एक बहुस्तरीय और जटिल सत्य है, जिसे विभिन्न दृष्टिकोण अलग-अलग ढंग से वर्णित करते हैं। उपनिषदों ने सहस्राब्दियों पूर्व अंतरानुभूति द्वारा यह अनुभूत सत्य उद्घोषित किया था कि चेतना ही ब्रह्म है तथा यह प्रत्येक जीव के आत्मस्वरूप में विद्यमान है। आधुनिक मनोविज्ञान ने, प्रारंभ में भिन्न मार्ग अपनाते हुए, चेतना के भौतिक, जैविक तथा व्यवहारगत पक्षों को उभारा, किंतु क्रमशः उसे भी अनुभव हुआ कि चेतना को उसके गहन आतंरिक पक्ष के बिना नहीं समझा जा सकता। फ्रायड ने अचेतन को उजागर कर मन के रहस्यों की तहें खोलीं, जुंग ने सामूहिक अचेतन द्वारा मानव चेतना की सार्वभौमिकता को रेखांकित किया, जेम्स और मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों ने उच्चतर चेतना-अवस्थाओं की वास्तविकता को स्वीकारा – ये सभी विकास उस प्राचीन सत्य की ओर जाते प्रतीत होते हैं जो उपनिषदों ने बताया था। अंतर केवल भाषा और पद्धति का है: उपनिषदों ने जहाँ चेतना को दर्शन और अध्यात्म का केन्द्र बनाया, वहीं मनोविज्ञान ने उसे विज्ञान और अनुभव के दायरे में परखा।

इस शोध का सार यह है कि **पूर्व एवं पश्चिम के इन दृष्टिकोणों में टकराव की अपेक्षा संवाद** की अधिक संभावना है। उपनिषद जहाँ चेतना का आध्यात्मिक मानचित्र प्रदान करते हैं, वहीं मनोविज्ञान मानसिक मानचित्र देता है – दोनों को मिलाकर देखने से मानवीय चेतना की अधिक समग्र समझ विकसित होती है। आधुनिक तंत्रिका-विज्ञान यदि उपनिषदों के गहन आत्मनिरीक्षण से प्राप्त अंतर्दृष्टियों को गंभीरता से ले, तो चेतना-अध्ययन में नई क्रांति संभव है। दूसरी ओर, उपनिषदों के संदेश को मनोविज्ञान की भाषा में ढालकर व्यापक विश्व तक पहुँचाने का कार्य भी लाभप्रद होगा। आज मानवता उसी पुल का निर्माण होते देख रही है – ध्यान और योग को मनोचिकित्सा अपना रही है, तो वैज्ञानिक चेतना-अध्ययन आत्मानुभूति की मूल्यवत्ता स्वीकार रहे हैं। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि उपनिषदों का चेतना-दर्शन और आधुनिक मनोविज्ञान परस्पर पूरक हैं। दोनों के निष्कर्षों का समन्वय हमें चेतना, आत्मा, मन और मस्तिष्क की उस पहेली के और निकट ला सकता है जो हम स्वयं हैं। जैसा छांदोग्य उपनिषद् में शिक्षा है: "नाल्पे सुखमस्ति, भूमैव सुखं" – सीमित (संकीर्ण) दृष्टि में सुख नहीं, पूर्णता (विस्तृत दृष्टि) में ही सुख है। अतः चेतना को समझने के लिए हमें विज्ञान और अध्यात्म दोनों की पूर्णता को अपनाना होगा। यही समन्वित एवं गहन दृष्टि मानव चेतना के वास्तविक रहस्यों को

उजागर करने में सक्षम होगी।

संदर्भ सूची :

1. ऐतरेय उपनिषद्.
2. छान्दोग्य उपनिषद्.
3. कठ उपनिषद्.
4. केन उपनिषद्.
5. तैत्तिरीय उपनिषद्.
6. बृहदारण्यक उपनिषद्.
7. माण्डूक्य उपनिषद्.
8. मन्त्र (ईशावास्य) उपनिषद्.
9. मुण्डक उपनिषद्.
10. प्रश्न उपनिषद्.
11. श्वेताश्वतर उपनिषद्.
12. Freud, Sigmund. The Interpretation of Dreams. Standard Ed., vol. 5, Hogarth Press, 1953.
13. James, William. The Varieties of Religious Experience. Penguin Classics, 1985.
14. Jung, C. G. Collected Works of C. G. Jung, Volume 6: Psychological Types. Princeton University Press, 1971.
15. "Collective Unconscious." Encyclopædia Britannica, Encyclopædia Britannica, Inc., 2016, www.britannica.com/science/collective-unconscious. Accessed 21 Dec. 2025.
16. Prabhu, H. R. Aravinda, and P. S. Bhat. "Mind and Consciousness in Yoga–Vedanta: A Comparative Analysis with Western Psychological Concepts." Indian Journal of Psychiatry, vol. 55, Suppl. 2, 2013, pp. S182–86.
17. Srivastava, K. "Human Nature: Indian Perspective Revisited." Industrial Psychiatry Journal, vol. 19, no. 2, 2010, pp. 77–81.
18. Vasumathi, R., and Mary Binu T. D. "Exploring the Psychological Concepts through the Lens of Upanishads." Journal of Positive School Psychology, vol. 6, no. 6, 2022.

•